श्रीमद् भगवदगीता – बारहवाँ अध्याय

अनुक्रम

बारहवें अध्याय का माहात्म्य 1
बारहवाँ अध्यायः भक्तियोग..... 3

बारहवें अध्याय का माहात्म्य

श्रीमहादेवजी कहते हैं – पार्वती ! दक्षिण दिशा में कोल्हापुर नामक एक नगर है, जो सब प्रकार के सुखों का आधार, सिद्ध-महात्माओं का निवास स्थान तथा सिद्धि प्राप्ति का क्षेत्र है। वह पराशक्ति भगवती लक्ष्मी की प्रधान पीठ है। सम्पूर्ण देवता उसका सेवन करते हैं। वह पुराणप्रसिद्ध तीर्थ भोग और मोक्ष प्रदान करने वाला है। वहाँ करोड़ो तीर्थ और शिवलिंग हैं। रुद्रगया भी वहाँ है। वह विशाल नगर लोगों में बहुत विख्यात है। एक दिन कोई युवक पुरुष नगर में आया। वह कहीं का राजकुमार था। उसके शरीर का रंग गोरा, नेत्र सुन्दर, ग्रीवा शंख के समान, कंधे मोटे, छाती चौड़ी तथा भुजाएँ बड़ी-बड़ी थीं। नगर में प्रवेश करके सब ओर महलों की शोभा निहारता हुआ वह देवेश्वरी महालक्ष्मी के दर्शनार्थ उत्कण्ठित हो मणिकण्ठ तीर्थ में गया और वहाँ स्नान करके उसने पितरों का तर्पण किया। फिर महामाया महालक्ष्मीजी को प्रणाम करके भक्तिपूर्वक स्तवन करना आरम्भ किया।

राजकुमार बोलाः जिसके हृदय में असीम दया भरी हुई है, जो समस्त कामनाओं को देती तथा अपने कटाक्षमात्र से सारे जगत की रचना, पालन और संहार करती है, उस जगन्माता महालक्ष्मी की जय हो। जिस शक्ति के सहारे उसी के आदेश के अनुसार परमेष्ठी ब्रह्मा सृष्टि रचते हैं, भगवान अच्युत जगत का पालन करते हैं तथा भगवान रुद्र अखिल विश्व का संहार करते हैं, उस सृष्टि, पालन और संहार की शक्ति से सम्पन्न भगवती पराशक्ति का मैं भजन करता हूँ।

कमले ! योगीजन तुम्हारे चरणकमलों का चिन्तन करते रहते हैं। कमलालये ! तुम अपनी स्वाभाविक सत्ता से ही हमारे समस्त इन्द्रियगोचर विषयों को जानती हो। तुम्हीं कल्पनाओं के समूह को तथा उसका संकल्प करने वाले मन को उत्पन्न करती हो। इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति – ये सब तुम्हारे ही रूप हैं। तुम परासंचित (परमज्ञान) रूपिणी हो। तुम्हारा स्वरूप निष्काम, निर्मल, नित्य, निराकार, निरंजन, अन्तरहित, आतंकशून्य, आलम्बहीन तथा निरामय है। देवि ! तुम्हारी महिमा का वर्णन करने में कौन समर्थ हो सकता है? जो षट्चक्रों का भेदन करके अन्तःकरण के बारह

स्थानों में विहार करती हैं, अनाहत, ध्वनि, बिन्दु, नाद और कला ये जिसके स्वरूप हैं, उस माता महालक्ष्मी को मैं प्रणाम करता हूँ। माता ! तुम अपने मुखरूपी पूर्णचन्द्रमा से प्रकट होने वाली अमृतराशि को बहाया करती हो। तुम्हीं परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी नामक वाणी हो। मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। देवी! तुम जगत की रक्षा के लिए अनेक रूप धारण किया करती हो। अम्बिके ! तुम्हीं ब्राह्मी, वैष्णवी, तथा माहेश्वरी शक्ति हो। वाराही, महालक्ष्मी, नारसिंही, ऐन्द्री, कौमारी, चण्डिका, जगत को पवित्र करने वाली लक्ष्मी, जगन्माता सावित्री, चन्द्रकला तथा रोहिणी भी तुम्हीं हो। परमेश्वरी ! तुम भक्तों का मनोरथ पूर्ण करने के लिए कल्पलता के समान हो। मुझ पर प्रसन्न हो जाओ।

उसके इस प्रकार स्तुति करने पर भगवती महालक्ष्मी अपना साक्षात् स्वरूप धारण करके बोलीं - 'राजकुमार ! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। तुम कोई उत्तम वर माँगो।'

राजपुत्र बोलाः माँ ! मेरे पिता राजा बृहद्रथ अश्वमेध नामक महान यज्ञ का अनुष्ठान कर रहे थे। वे दैवयोग से रोगग्रस्त होकर स्वर्गवासी हो गये। इसी बीच में यूप में बँधे हुए मेरे यज्ञसम्बन्धी घोड़े को, जो समूची पृथ्वी की परिक्रमा करके लौटा था, किसी ने रात्रि में बँधन काट कर कहीं अन्यत्र पहुँचा दिया। उसकी खोज में मैंने कुछ लोगों को भेजा था, किन्तु वे कहीं भी उसका पता न पाकर जब खाली हाथ लौट आये हैं, तब मैं ऋत्विजों से आज्ञा लेकर तुम्हारी शरण में आया हूँ। देवी ! यदि तुम मुझ पर प्रसन्न हो तो मेरे यज्ञ का घोड़ा मुझे मिल जाये, जिससे यज्ञ पूर्ण हो सके। तभी मैं अपने पिता जी का ऋण उतार सकूँगा। शरणागतों पर दया करने वाली जगज्जननी लक्ष्मी ! जिससे मेरा यज्ञ पूर्ण हो, वह उपाय करो।

भगवती लक्ष्मी ने कहाः राजकुमार ! मेरे मन्दिर के दरवाजे पर एक ब्राह्मण रहते हैं, जो लोगों में सिद्धसमाधि के नाम से विख्यात हैं। वे मेरी आज्ञा से तुम्हारा सब काम पूरा कर देंगे।

महालक्ष्मी के इस प्रकार कहने पर राजकुमार उस स्थान पर आये, जहाँ सिद्धसमाधि रहते थे। उनके चरणों में प्रणाम करके राजकुमार चुपचाप हाथ जोड़ कर खड़े हो गये। तब ब्राह्मण ने कहाः 'तुम्हें माता जी ने यहाँ भेजा है। अच्छा, देखो। अब मैं तुम्हारा सारा अभीष्ट कार्य सिद्ध करता हूँ।' यों कहकर मन्त्रवेत्ता ब्राह्मण ने सब देवताओं को वही खींचा। राजकुमार ने देखा, उस समय सब देवता हाथ जोड़े थर-थर काँपते हुए वहाँ उपस्थित हो गये। तब उन श्रेष्ठ ब्राह्मण ने समस्त देवताओं से कहाः 'देवगण ! इस राजकुमार का अश्व, जो यज्ञ के लिए निश्चित हो चुका था, रात में देवराज इन्द्र ने चुराकर अन्यत्र पहुँचा दिया है। उसे शीघ्र ले आओ।'

तब देवताओं ने मुनि के कहने से यज्ञ का घोड़ा लाकर दे दिया। इसके बाद उन्होंने उन्हे जाने की आज्ञा दी। देवताओं का आकर्षण देखकर तथा खोये हुए अश्व को

पाकर राजकुमार ने मुनि के चरणों में प्रणाम करके कहाः 'महर्षे ! आपका यह सामर्थ्य आश्चर्यजनक है। आप ही ऐसा कार्य कर सकते हैं, दूसरा कोई नहीं। ब्रह्मन् ! मेरी प्रार्थना सुनिये, मेरे पिता राजा बृहद्रथ अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान आरम्भ करके दैवयोग से मृत्यु को प्राप्त हो गये हैं। अभी तक उनका शरीर तपाये हुए तेल में सुखाकर मैंने रख छोड़ा है। आप उन्हें पुनः जीवित कर दीजिए।'

यह सुनकर महामुनि ब्राह्मण ने किंचित मुस्कराकर कहाः 'चलो, वहाँ यज्ञमण्डप में तुम्हारे पिता मौजूद हैं, चलें।' तब सिद्धसमाधि ने राजकुमार के साथ वहाँ जाकर जल अभिमन्त्रित किया और उसे शव के मस्तक पर रखा। उसके रखते ही राजा सचेत होकर उठ बैठे फिर उन्होंने ब्राह्मण को देखकर पूछाः 'धर्मस्वरूप ! आप कौन हैं?' तब राजकुमार ने महाराज से पहले का सारा हाल कह सुनाया। राजा ने अपने को पुनः जीवनदान देने वाले ब्राह्मण को नमस्कार करके पूछाः "ब्राह्मण ! किस पुण्य से आपको यह अलौकिक शक्ति प्राप्त हुई है?" उनके यों कहने पर ब्राह्मण ने मधुर वाणी में कहाः 'राजन ! मैं प्रतिदिन आलस्यरहित होकर गीता के बारहवें अध्याय का जप करता हूँ। उसी से मुझे यह शक्ति मिली है, जिससे तुम्हें जीवन प्राप्त हुआ है।' यह सुनकर ब्राह्मणों सहित राजा ने उन महर्षि से उन से गीता के बारहवें अध्याय का अध्ययन किया। उसके माहात्म्य से उन सबकी सदगती हो गयी। दूसरे-दूसरे जीव भी उसके पाठ से परम मोक्ष को प्राप्त हो चुके हैं।

ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ

(अनुक्रम)

बारहवाँ अध्यायः भक्तियोग

दूसरे अध्याय से लेकर यहाँ तक भगवान ने प्रत्येक स्थान पर सगुण साकार परमेश्वर की उपासना की प्रशंसा की। सातवें अध्याय से ग्यारहवें अध्याय तक खास सगुण साकार परमात्मा की उपासना का महत्त्व बताया है। उसके साथ पाँचवें अध्याय में 17 से 26 श्लोक तक, छठवें अध्याय में 24 से 29 श्लोक तक, आठवें अध्याय में 11 से 13 श्लोक तक इसके अलावा और कई जगहों पर निर्गुण निराकार की उपासना का महत्त्व बताया है। अंत में ग्यारहवें अध्याय के आखिरी श्लोक में सगुण-साकार भगवान की अनन्य भक्ति का फल भगवत्प्राप्ति बताकर '**मत्कर्मकृत्**' से शुरु हुए उस आखिरी श्लोक में सगुण-साकार स्वरूप भगवान के भक्त की महत्ता जोर देकर समझाई है। इस विषय पर अर्जुन के मन में ऐसी पैदा हुई कि निर्गुण-निराकार ब्रह्म की तथा सगुण-साकार भगवान की उपासना करने वाले दोनों उपासकों में उत्तम कौन? यह जानने के लिए अर्जुन पूछता हैः

(अनुक्रम)

।। अथ द्वादशोऽध्यायः ।।

अर्जुन उवाच

एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः।।1।।

अर्जुन बोलेः जो अनन्य प्रेमी भक्तजन पूर्वोक्त प्रकार निरन्तर आपके भजन ध्यान में लगे रहकर आप सगुणरूप परमेश्वर को और दूसरे जो केवल अविनाशी सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्म को ही अति श्रेष्ठ भाव से भजते हैं – उन दोनों प्रकार के उपासकों में अति उत्तम योगवेत्ता कौन हैं?

श्रीभगवानुवाच

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः।।2।।

श्री भगवान बोलेः मुझमें मन को एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन-ध्यान में लगे हुए जो भक्तजन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धा से युक्त होकर मुझ सगुणरूप परमेश्वर को भजते हैं, वे मुझको योगियों में अति उत्तम योगी मान्य हैं।(2)

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम्।।3।।
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।।4।।
क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते।।5।।

परन्तु जो पुरुष इन्द्रियों के समुदाय को भली प्रकार वश में करके मन बुद्धि से परे सर्वव्यापी, अकथीनयस्वरूप और सदा एकरस रहने वाले, नित्य, अचल, निराकार, अविनाशी, सच्चिदानन्दघन ब्रह्म को निरन्तर एकीभाव से ध्यान करते हुए भजते हैं, वे सम्पूर्ण भूतों के हित में रत और सब में समान भाववाले योगी मुझको ही प्राप्त होते हैं। उन सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्म में आसक्त चित्तवाले पुरुषों के साधन में परिश्रम विशेष है, क्योंकि देहाभिमानियों के द्वारा अव्यक्त-विषयक गति दुःखपूर्वक प्राप्त की जाति है।(3,4,5)

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते।।6।।
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्।।7।।

परन्तु जो मेरे परायण रहने वाले भक्तजन सम्पूर्ण कर्मों को मुझे अर्पण करके मुझ सगुणरूप परमेश्वर को ही अनन्य भक्तियोग से निरन्तर चिन्तन करते हुए भजते हैं। हे अर्जुन ! उन मुझमें चित्त लगाने वाले प्रेमी भक्तों का मैं शीघ्र ही मृत्युरूप संसार-समुद्र से उद्धार करने वाला होता हूँ।(6,7)

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः।।8।।

मुझमें मन को लगा और मुझमें ही बुद्धि को लगा। इसके उपरान्त तू मुझमें निवास करेगा, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। (8)

अथ चित्तं समाधातुं शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय।।9।।

यदि तू मन को मुझमें अचल स्थापन करने के लिए समर्थ नहीं है तो हे अर्जुन ! अभ्यासरूप योग के द्वारा मुझको प्राप्त होने के लिए इच्छा कर।(9)

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि।।10।।

यदि तू उपर्युक्त अभ्यास में भी असमर्थ है तो केवल मेरे लिए कर्म करने के ही परायण हो जा। इस प्रकार मेरे निमित्त कर्मों को करता हुआ भी मेरी प्राप्तिरूप सिद्धि को ही प्राप्त होगा।(10)

अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान्।।11।।

यदि मेरी प्राप्ति रूप योग के आश्रित होकर उपर्युक्त साधन को करने में भी तू असमर्थ है तो मन बुद्धि आदि पर विजय प्राप्त करने वाला होकर सब कर्मों के फल का त्याग कर।(11)

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्।।12।।

मर्म को न जानकर किये हुए अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है। ज्ञान से मुझ परमेश्वर के स्वरूप का ध्यान श्रेष्ठ है और ध्यान से भी सब कर्मों के फल का त्याग श्रेष्ठ है क्योंकि त्याग से तत्काल ही परम शान्ति होती है।(12)

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी।।13।।
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद् भक्तः स मे प्रियः।।14।।

जो पुरुष सब भूतों में द्वेषभाव से रहित, स्वार्थरहित, सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है तथा ममता से रहित, अहंकार से रहित, सुख-दुःखों की प्राप्ति में सम और क्षमावान है अर्थात् अपराध करने वाले को भी अभय देने वाला है, तथा जो योगी निरन्तर सन्तुष्ट है, मन इन्द्रियों सहित शरीर को वश में किये हुए हैं और मुझमें दृढ़ निश्चयवाला है – वह मुझमें अर्पण किये हुए मन -बुद्धिवाला मेरा भक्त मुझको प्रिय है।(13,14)

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः।।15।।

जिससे कोई भी जीव उद्वेग को प्राप्त नहीं होता और जो स्वयं भी किसी जीव से उद्वेग को प्राप्त नहीं होता तथा जो हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेगादि से रहित है – वह भक्त मुझको प्रिय है। (15)

अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मदभक्तः स मे प्रियः।।16।।

जो पुरुष आकांक्षा से रहित, बाहर-भीतर से शुद्ध, चतुर, पक्षपात से रहित और दुःखों से छूटा हुआ है – वह सब आरम्भों का त्यागी मेरा भक्त मुझको प्रिय है।(16)

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः।।17।।

जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मों का त्यागी है – वह भक्तियुक्त पुरुष मुझको प्रिय है।(17)

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः।।18।।
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः।।19।।

जो शत्रु-मित्र में और मान-अपमान में सम है तथा सर्दी, गर्मी और सुख-दुःखादि द्वन्द्वों में सम है और आसक्ति से रहित है। जो निन्दा-स्तुति को समान समझने वाला, मननशील और जिस किसी प्रकार से भी शरीर का निर्वाह होने में सदा ही सन्तुष्ट है और रहने के स्थान में ममता और आसक्ति से रहित है – वह स्थिरबुद्धि भक्तिमान पुरुष मुझको प्रिय है।(18,19)

ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः।।20।।

परन्तु जो श्रद्धायुक्त पुरुष मेरे परायण होकर इस ऊपर कहे हुए धर्ममय अमृत को निष्काम प्रेमभाव से सेवन करते हैं, वे भक्त मुझको अतिशय प्रिय हैं।(20)

ॐ तत्सदिति श्रीमद् भगवद् गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे भक्तियोगो नाम द्वादशोऽध्यायः ।।12।।
इस प्रकार उपनिषद, ब्रह्मविद्या तथा योगशास्त्र रूप श्रीमद् भगवद् गीता के
श्रीकृष्ण-अर्जुन संवाद में भक्तियोग नामक बारहवाँ अध्याय संपूर्ण हुआ।
ॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐॐ